ORIGINAL ARTICLE ISSN:- 2231-5063

Golden Research Thoughts

Abstract :-

''वस्तुतः बाबू बालमुकुंद गुप्त जी के साहित्य व पत्रकारिता में प्रत्येक दृष्टि से राष्ट्रीय भावना ही उजागर हुई है तथा उनकी पत्रकारिता में राष्ट्र–प्रेम का प्रबल स्वर व वेदना मुखरित हुई है। उनकी सामाजिक चेतना के पीछे भी मूल विचार राष्ट्रीय भावना का ही है। तत्कालीन समय में अंग्रेजो से पीड़ित जनता, लूटे जा रहे किसान, व आर्थिक अभावों व व्यवस्थाओं के प्रतिकूल होने से सड़क पर दम तोड़ते व्यक्तियों की रचनाएं। गुप्त जी को सीधे जनमानस से जोड़कर, उनके उत्थान की कामना करके, गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना को ही उकेरती है। बंग–भंग के समय कर्जन को निशाना बनाकर गुप्त जी ने जो कुछ लिखा, उससे उनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही प्रकट हुआ है। उनकी लेखनी चाहे गद्य में चली या पद्य में हर रूप में राष्ट्रीय भाव लिए हुए है। वास्तव में 1886 से 'अखबारे चुनार' से प्रारंभ होने वाला उनका पत्रकारिता का सफर 1899 में 'भारत मित्र' पर आकर पूरा हुआ और इस समय उन्होंने अनेकों देशभक्ति के लेख लिखे व प्रकाशित किए। वस्तुतः यह उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है जहां आकर उनकी राष्ट्रीयता की भावना मुखरित होती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कालांकर, कोहेनूर, हिन्दुस्थान तथा हिन्दी बंगवासी में भी एक पत्रकार के रूप में कार्य किया , जिसके कारण उनकी लेखनी में राष्ट्रीय चेतना का स्वर व वेदना पूर्ण रूप से दिखाई देती है।''

बाबू बालमुकुंद गुप्त की पत्रकारिता में राष्ट्रीय चेतना का स्वर व वेदना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Rajeshwer Lather

Assistant Professor,
Department of Journalism
& Mass Communication,A.I. Jat H.
M. College, Rohtak (Haryana).

Keywords : राष्ट्रीय चेतना, परतंत्रता, संस्कृति, मिथ्यावाद, स्वदेशी, बंग–भंग।

प्रस्तावनाः—

चंद्रकांत मेहता ने पत्रकारिता को महत्वपूर्ण मानते हुए जो कुछ भी लिखा है, वह बाबू बालमुकुंद गुप्त जी की पत्रकारिता के संदर्भ में सटीक बैठता है। चूंकि पत्रकारिता राष्ट्रीय चेतना की संवाहक होती है। इसका कार्य परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ने में अहम् भूमिका अदा करना है। समाज तथा राष्ट्र के उत्थान में पत्रकारिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका एक निर्विवाद सत्य है।[1] इसी तरह गुप्त जी राष्ट्रीय चेतना को आधार बनाकर कृष्ण बिहारी मिश्र ने लिखा है – 'गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना बड़ी प्रखर थी। लार्ड कर्जन जैसे अत्याचारी गर्वनर जनरल के शासनकाल में गुप्त जी के हाथों में 'भारत मित्र' जैसा तेजस्वी अस्त्र था जिससे उन्होंने लार्ड कर्जन पर खुलकर प्रहार किया था। गुप्त जी 'भारत मित्र' के सर्वेसर्वा थे, इसलिए पूरी इच्छा और स्वतन्त्रता से अपनी बात कहते थे। 'सारसुधानिधि' के माध्यम से पं. सदानन्द मिश्र ने लार्ड लिटन जैसे अत्याचारी गर्वनर जरनल का जिस तेजस्विता से विरोध किया था उसी भावना में गुप्त जी ने भी लार्ड कर्जन पर प्रहार किया था। शिवशम्भु का चिट्ठा और शाइस्ता खां के खत् गुप्त जी की राष्ट्रीयता को ही पेश करते हैं।[2]

'भारत मित्र' के प्रधान संपादक बनने के बाद यह बाबू बालमुकुंद गुप्त जी की कलम का ही जादू था कि 'भारत मित्र' राष्ट्रीय चेतना का एक विशिष्ट पत्र अपने युग में बन गया था। गुप्त जी भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीयता के पक्षधर थे। वे समाज एवं धर्म में स्वस्थ चिन्तन एवं मूल्यों के समर्थक थे। किसी तरह का ढोंग उन्हे पंसद नहीं था। उसी समय अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना से देश में राष्ट्रीयता के नए जवार ने सम्पूर्ण देश की पत्रकारिता को झकझोर दिया। गुप्त जी भी इस प्रवाह से अनासक्त नहीं थे। उन्होंने अपनी पैनी व्यंग्य शैली से देश की दयनीय आर्थिक स्थिति का चित्रण किया और दूसरी ओर देश के अंग्रेज शासकों की उदासीनता तथा लार्ड कर्जन की पैशाचिकता को 'शिवशम्भू के चिट्ठे' द्वारा उधेड़ कर रख दिया जो उनकी राष्ट्रीय भावना का ही प्रतीक है।[3]

जब लार्ड कर्जन वायसराय बनकर भारत आए तो उनके स्वागत में भव्य दरबार का आयोजन किया गया और 'भारत मित्र' के संपादक के नाते गुप्त जी को भी आमंत्रित किया गया। उन्हें जूरी का भी सदस्य बनाया गया। परन्तु दरबार के नाम पर गुप्त जी ने पाया कि अनेक लोग कर्जन की चाटुकारी कर रहे थे। इससे गुप्त जी आहत हुए और 'शिवशम्भू के चिट्ठे' नामक लेख में कर्जन को निशाना बनाते हुए लिखा –'आप बारम्बार अपने दो अति तुम–तराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली दरबार। पर जरा विचारिये तो ये दोनों काम 'शो' हुए या 'डयूटी'? विक्टोरिया मेमोरियल हाल चन्द पेट भरे अमीरों के एक–दो बार देख आने की चीज होगा। उससे दरिद्रों का कुछ दुख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होगें।'[4]

उन्होंने आगे लिखा है – 'अब दरबार की बात सुनिये कि क्या था? आपके ख्याल से यह बहुत बड़ी चीज था। पर भारतवासियों की दृष्टि में वह बुलबुलों के स्वप्न से बढ़कर कुछ न था। जहां–जहां से वह जुलूस के हाथी आये, वहीं–वहीं सब लौट गये। जिस हाथी पर आप सुनहरी झूले और सोने का हौदा लगवाकर छत्रधारणपूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया। आप भी जानते थे कि आपका नहीं। दरबार में जिस सुनहरी सिंहासन पर विराजमान होकर अपने भारत के सब राजा–महाराजाओं की सलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भलीभांति जानते हैं कि वह आपका न था। यह सब चीजें नुमायशी थी।[5]

जब लार्ड कर्जन ने भारत में अपनी दमनकारी नीति चलाई तो गुप्त जी चुप बैठने वाले नहीं थे। उन्होंने एक खत के माध्यम से कर्जन को पद लोलुपता और स्वार्थपूर्ण नीति पर प्रहार करते हुए लिखा है – 'अंहकार, आत्मश्लाघा, जिद्द और गाल बजाई में तो कर्जन अपना सानी आप निकले। जब से अंग्रेजी राज्य प्रारम्भ हुआ है, तब से इन गुणों में आपकी बराबरी कराने वाला एक भी बड़ा लाट इस देश में नहीं आया। भारतवर्ष की बहुत–सी प्रजा के मन में धारणा है कि जिस देश में जल न बरसता हो, लार्ड कर्जन पदार्पण करें तो वर्षा होने लगती है और जहां के लोग अति वर्षा और तुफान से तंग हो, वहां कर्जन के जाने से स्वच्छ सूर्य निकल आता है।'[6] यहां गुप्त जी ने व्यंग्य शैली में कर्जन के शासन की दमनकारी नीति को उजागर करके अपनी राष्ट्रीय भावना का ही परिचय दिया है।

इसी तरह जब लार्ड कर्जन दूसरी बार भारत आए तो उनके स्वागत में 'भारत मित्र' में 26 नवम्बर 1904 को 'श्रीमान का स्वागत' शीर्षक से गुप्त जी ने अपने सहित सम्पूर्ण भारतवासियों का प्रतिक्रिया को व्यक्त करके अपनी राष्ट्र–प्रेम की भावना व्यक्त है। उन्होंने लिखा है – 'इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते है और आप यह जानतें भी है कि आप क्यों आते हैं। यदि भारतवासियों का वश चलता तो आपको न आने देते और आपका वश चलता तो और भी कई सप्ताह पहले आ जाते। पर दोनों ओर की बात किसी ओर के हाथ में है। इसमें भारतीयों का कुछ वश नहीं है और बहुत सी बातों पर वश रखने वाले लार्ड कर्जन को भी बहुत बातों में बेबस होना पड़ता है।[7]

जब लार्ड कर्जन ने कलकता विश्विद्यालय के अपने भाषण में पूर्व के लोगों को मिथ्यावादी तथा सत्य का अनादर करने वाला कहा तो गुप्त जी ने इसे भारत की नैतिकता पर प्रहार माना। उन्होंने 'शिवशम्भू के चिट्ठे' के माध्यम से कर्जन को चेताते हुए कहा –'जो सत्यप्रियता इस देश को सृष्टि के आदि से मिली है, जिस देश का ईश्वर 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रहम' है, वहां के लोगों को सभा में बुला के ज्ञानी और विद्वान का चोला पहनकर उनके मुंह पर झूठा और मक्कार कहने लगे। विचारिये तो ये कैसे अधःपतन की बात है? जिस स्वदेश को श्रीमान ने आदर्श सत्य का देश कहा है और वहां के लोगों को सत्यवादी कहा है, उसका आला नमूना क्या श्रीमान् ही हैं? यदि सचमुच विलायत वैसा ही देश है, जैसा आप फरमाते हैं और भारत भी आपके कथनानुसार मिथ्यावदी और धूर्त देश हो, तो भी तो क्या कोई इस प्रकार कहता है? अपनी सत्यवादिता प्रकाश करने के लिए दूसरे को मिथ्यावादी कहना ही क्या सत्यवादिता का सबूत है।'[8] इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त जी को देश से कितना प्यार था। वे हमेशा हर बात को भारतीय दृष्टिकोण से ही सोचते थे और अपने जीवन की अन्तिम सांस तक देश प्रेम की भावना को ही अंगीकार किए रहे। उन्होंने कर्जन को चेताते हुए आगे लिखा है –

'माई लार्ड! जब आपने अपने शासक होने के विचार को भूलकर इस देश की प्रजा के हृदय को चोट पहुंचायी है तो दो–एक बातें पूछ लेने में शायद कुछ गुस्ताखी न होगी। यह देश भी यदि विलायत की भांति स्वाधीन होता और यहां के लोग ही यहां के राजा होते तब यदि अपने देश के लोगों से अधिक सच्चा साबित कर सकते तो आपकी अवश्य कुछ बहादुरी होती। स्मरण रखिए उन दिनों को कि जब अंग्रेजों के देश पर विदेशियों का अधिकार था। उस समय

आपके विदेशियों की नैतिक दशा कैसी थी, उसका विचार तो कीजिए। यह वह देश है कि हजार साल पराये पांव के नीचे रहकर भी एकदम सत्यता से च्युत नहीं हुआ है। यदि यूरोप या इंग्लैण्ड दस साल भी पराधीन रह जाते तो आपको मालूम पड़े कि श्रीमान के स्वदेशीय कैसे सत्यवादी और नीतिपरायण है।'[9] इस लेख में गुप्त जी गुलामी के दंश को अनुभव करते हुए स्वतन्त्रता की भावना अपने दिल में रखकर जल्दी से भारत की आजादी की भी कामना की है। उन्होंने इस बात को निर्बाध रूप से लिखा है कि पराधीनता का दंश झेलकर भी भारत सत्य और न्याय के मार्ग पर अटल रहा है। वस्तुतः यहां पर भी गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना का स्वर प्रखर हुआ है।

जब लार्ड कर्जन ने अपने भाषणों में अंग्रेज जाति की प्रशंसा की और भारतीयों की बुराई की तो गुप्त जी ने भारतीयता का निर्वहन करते हुए कहा–'आप परीक्षा करके देखियें कि भारतवासी सचमुच उन उंचे से उंचे कामों को कर सकते हैं या नहीं, जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं। श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, काम में, वृक्तृता में, सहिष्णुता में भारत का कोई भी सानी नहीं हैं, हां दो बातों में भारतीय लोग अंग्रेजों की नकल नहीं कर सकते। एक तो अपने शरीर के काले रंग को अंग्रेजों की भांति गौरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्य को उनके भाग्य से रगड़कर बराबर नहीं कर सकते।'[10]

गुप्त जी ने अपनी राष्ट्रीय भावना का परिचय बंग–भंग पर प्रतिक्रिया व्यक्त करके भी दिया है। बंग भंग से दुखी होकर गुप्त जी ने 'भारत मित्र' में 'बंगविच्छेद' शीर्षक से प्रकाशित लेख में लिखा है – 'आपके शासनकाल में बंगविच्छेद इस देश के लिए अन्तिम विवाद और आपके लिए अन्तिम हर्ष है। यह बंगविच्छेद बंग का विच्छेद नहीं। बंग निवासी इससे विछिन्न नहीं हुए, वरंच और युक्त हो गये। जिन्होंने गत 16 अक्तूबर का दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंग देश या भारतवर्ष में नहीं, पृथ्वी भर में वह अपूर्व दृश्य था। आर्य सन्तान उस दिन अपने प्राचीन देश में विचरण करती थी। बंगभूमि ऋषि मुनियों के समय की आर्य–भूमि बनी हुई थी। किसी अपूर्व शक्ति ने उसको उस दिन एक राखी से बांध दिया था। बहुत काल के पश्चात भारत सन्तान को होश हुआ कि भारत की मिट्टी वंदना योग्य है। इसी से वह एक स्वर से वंदेमातरम् कहकर चिल्ला उठे। बंगाल के टुकड़े नहीं हुए, वंरच भारत के अमान्य टुकड़े भी बंग देश से आकर चिमटे जाते हैं। [11] इस टिप्पणी की व्याख्या करते हुए गुप्त जी ने कहा था कि जो भारतवासी अंग्रेजों के प्रति श्रदा भाव रखते हैं, वह बेकार है। इससे बेहतर होगा कि भारतीय अंग्रेजों की दमनकारी नीति का खुलकर विरोध करें।

जब लार्ड कर्जन भारत में अपना दूसरा कार्यकाल पूरा करके जाने लगे तो गुप्त जी ने 'विदाई सम्भाषण' लेख 'भारत मित्र' में 2 सितम्बर 1905 को प्रकाशित किया। उन्होंने इसमें लिखा है –'आगे भी इस देश में जो प्रधानशासक आए अन्त में उनको जाना पड़ा। इससे आज का जाना भी परम्परा की चाल से कुछ अलग नहीं है, तथापि आपके शासनकाल का घोर दुर्खांत है और अधिक आश्चर्य की बात यह है कि दर्शक तो क्या स्वयं सूत्रधार भी नहीं जानता कि उसने जो खेल सुखान्त समझकर आरम्भ किया था, वह दुखान्त हो जाएगा। जिसके आदि में सुख था, मध्य में सीमा से बाहर सुख था और उसका अन्त ऐसे घोर दुख के साथ कैसे हुआ?[12]

गुप्त जी ने अपने इस लेख में लार्ड कर्जन के कुकृत्यों का स्मरण दिलाकर साहसपूर्वक पूछा – 'क्या आंख बंद करके मनमाने हुक्म चलाना और किसी की कुछ न सुनने का नाम ही शासन है? क्या प्रजा की बात पर कभी कान न देना और उसको दबाकर उसकी मर्जी के विरूद्व जिद्द से सब काम किये चले जाना ही शासन कहलाता है? एक काम तो ऐसा बताइये जिसमें आपने जिद्द छोड़कर प्रजा की बात पर ध्यान दिया हो। नादिरशाह ने भी जब दिल्ली में कतलेआम किया तो आसिफशाह के तलवार गले में डालकर प्रार्थना करने पर उसने कतलेआम उसी दम रोक दिया। पर आठ करोड प्रजा के गिड़गिड़ाकर बंगविच्छेद न करने की प्रार्थना पर आपने ध्यान नहीं दिया।'[13] इन पंक्तियों में गुप्त जी ने कर्जन के दुःसाहसिक कार्य ;बंग–भंगद्ध पर टिप्पणी करके भारत–भूमि से अपने लगाव का ही परिचय दिया है।

गुप्त जी 'भारत मित्र' को पूर्णतयाः भारतीय रूप में ही रखने के पक्षधर थे। एक बार 'आर्यावर्त' ने 'भारत मित्र' के नाम और उद्देश्य में असंगति दिखलाते हुए गलत आरोप लगाया था, जिसके उत्तर में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने एक लम्बी कैफियत दी थी। उन्होंने लिखा –'भारत मित्र' भारत वर्ष का कागज है। भारतवर्ष हिन्दुओं का देश है। हिन्दुओं ने 'भारत मित्र' को जन्म दिया है। जिन लोगों ने इसे चलाया है, वह हिन्दू और जो लिखते हैं, वह भी हिन्दू है, इसी से 'भारत मित्र' हिन्दुओं का तरफदार है और वह तरफदारी किसी महजब वाले से लड़ाई करके नहीं, दूसरे महजब को अपने महजब वाले से लड़ाई करके नहीं, दूसरे महजब को अपने महजब में मिलाने के लिए नहीं, केवल हिन्दुओं की मुलकी, माली और राजनीतिक तरफदारी है। हिन्दुस्तान में ही 'पायनीयर' और 'इंग्लिशमैन' आदि पत्रों को देखिये – वह अंग्रेज जाति के किस प्रकार तरफदार है, पॉलिटिकल रीति से जो कुछ तरफदारों स्वजाति की करनी चाहिए सो वह करते हैं। कहिए हम उनको किस बात में क्या दोष दे सकते हैं ? स्वजाति प्रेम, स्वदेशानुराग मनुष्य का धर्म है। हम एक बात अपने सहयोगी 'आर्यावर्त' से कहते हैं। वह यह है कि यदि आपके यहां भी कोई धर्म हो और उस धर्म में कुछ भी श्रद्धा भक्ति की बात हो तो उसका पालन कीजिए, उसकी तरफदारी कीजिए हम उसकी प्रशंसा करेंगे और हमारे लिए भी आशीर्वाद कीजिए कि हम अपने धर्म के सदा पक्के रहें।'[14]

इसी तरह की राष्ट्रीय भावना गुप्त जी ने उस समय भी दिखाई, जब स्वदेशी आन्दोलन को दबाने के लिए फुलर ने बड़ी दमनकारी नीति चलाई। फुलर भारतीय जनचेतना को रोकने में पुरी तरफ नाकाम रहे और अन्त में उनके शासन का भी अन्त हो गया। गुप्त जी ने फुलर को अपने 'भारत मित्र' में लेख लिखकर वास्तविकता से अवगत कराया। गुप्त जी ने फुलर के जाते वक्त लिखा– 'तुम चले, अब कहने से ही क्या है? पर जो तुम्हारे जानशीन होते हैं, वह सुन रखे कि जमाने के बहते दरिया को लाठी मार के कोई नहीं रोक सकता। दूसरे को तंग करके कोई खुश नहीं रह सकता। अपने मुल्क को जाओ और तोकीफ दे तो हिन्दुस्तान के लोगों को कभी–कभी दुआएं खैर से याद करना।'[15]

गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना को समझते हुऐ आर. सी. त्रिपाठी लिखते हैं – ''गुप्त जी भारतीय राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक और भारतीय संस्कृति के दृढ़ पोषक थे। लेकिन रूढ़िवाद तथा पोंगापन उन्हें सहन नहीं था। जिस समय गुप्त जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, उस समय समस्त भारत में राष्ट्रीय भावनाएं हिलोरें ले रही थी। ऐसे में गुप्त जी ने भी अपनी पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय जागृति को बढ़ाने में अपना अहम् योगदान दिया।''[16]

सारांश :

उपरोक्त वाद–विवाद के बाद सार रूप में कहा जा सकता है कि बाबू बालमुकुंद गुप्त राष्ट्रीय भावना के पत्रकार थे और उनके 'भारत मित्र' में प्रकाशित लेखों में तत्कालीन समय में अंग्रेजी शासन और सामंतशाही से पीड़ित भारतीयता की वेदना को प्रखर अभिव्यक्ति दी है। शोषित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने जो कुछ भी लिखा उससे उनकी राष्ट्र के प्रति भक्ति भावना ही झलकती है। उन्होंने उन भारतीयों पर भी प्रहार किया है जो भारत माता की संतान होते हुए भी भारतीय नहीं थे बल्कि अंग्रेजों की चापलुसी करते थे। उन्होंने 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में अंग्रेजों पर जो प्रहार किए, वे राष्ट्रीय भावना का ही प्रतीक है। उनकी पत्रकारिता में राष्ट्र–प्रेम ही उजागर हुआ है और उन्हें हर स्तर पर सच्चे राष्ट्रवादी लेखक व पत्रकार होने का ही परिचय दिया है। यदि यह कहा जाए कि गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना विशुद्ध भारतीय है, तो कोई गलत नहीं है। वास्तव में गुप्त जी राष्ट्रवादी परंपरा के ऐसे पत्रकार थे जिन्होंने भारतीय जनमानस को जगाने का कार्य किया और अंग्रेजी शासन की नाकामी की पोल खोलकर भारतीयों में राष्ट्रवादी भावना जागृत की जिससे भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन को नई दिशा मिली।

REFERENCES :

1.डॉ. चन्द्रकान्त मेहता, हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता, हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर, 2003, पृ. 17
2.कृष्णबिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता : जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण–भूमि, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2000 पृ. 427
3.विनोद गोदरे, हिन्दी पत्रकारिता : स्वरूप एवं सन्दर्भ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 137–38
4.जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता के कीर्तिमान, साहित्य संगम, इलाहबाद, 1993, पृ. 109
5.अमरेन्द्र कुमार, ;संपादितद्ध, युगप्रवर्तक पत्रकार और पत्रकारिता, अक्षरांकन प्रकाशन, नोएडा, 2003, पृ. 24.
6.क्षेमचन्द्र सुमन, हिन्दी के यशस्वी पत्रकार, प्रकाशन विभागः सूचना व प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1986, पृ. 82
7.भारत मित्र, 26 नवम्बर 1904.
8.कृष्ण बिहारी मिश्र,पूर्वोक्त, पृ. 264.
9.वही, पृ. 264–65.
10.वही, पृ. 266.
11.वही, पृ. 267
12.भारतमित्र, 2 सितम्बर 1905.
13.वही।
14.कृष्ण बिहारी मिश्र, पूर्वोक्त, पृ. 272
15.वही, पृ. 269.
16.आर. सी. त्रिपाठी, हिन्दी पत्रकारिता के सिद्धान्त, पल्लव प्रकाशन, दिल्ली, 1993, पृ. 268–269